# 25

# बहुभाषिकता, भाषा-नीति एवं संविधान-सभा के बहस-मुबाहिसे

*यह संक्षिप्त निबन्ध भारत में भाषा सम्बन्धी मुद्दों पर संविधान-सभा में हुई बहसों तथा भारत के संविधान में भाषा सम्बन्धी प्रावधानों पर एक नज़र डालते हुए भारत की भाषा-नीति तथा शिक्षण के लिए उसके निहितार्थ पर ध्यान केन्द्रित करता है। संविधान-सभा के बहस-मुबाहिसों से हमें विभिन्न हितधारकों के इरादों के बारे में पता चलता है। ये बहस-मुबाहिसे 9 दिसम्बर 1946 से 1949 तक चले और 26 जनवरी 1950 को लागू हुए भारत के संविधान की घोषणा पर आकर समाप्त हुए।*

निबन्ध रेखांकित करता है कि भाषा के मुद्दे हमेशा से ही जटिल और संजीदा रहे हैं। हर व्यक्ति के लिए भाषा का अपना-अपना अर्थ होता है और वह उसी अर्थ के आधार पर भाषा के बारे में अपनी दलीलें देता है। कुछ ऐसा ही संविधान सभा की बहसों में भी हुआ। किसी समूह के लिए हिन्दी को रुतबा देना महत्वपूर्ण था, तो किसी अन्य समूह के लिए तमिल, और किसी के लिए अँग्रेज़ी को... और सभी के पास अपना पक्ष रखने के मज़बूत तर्क भी थे। इन सभी तर्कों को देखते और परखते हुए संविधान सभा में निर्णय लिया गया कि भारत की कोई राष्ट्र भाषा नहीं होगी। यह निबन्ध संविधान सभा में विभिन्न भाषाओं को क्या दर्जा दिया जाए व क्यों, इस सवाल पर हुई बहस व लिए गए निर्णयों को बताता है और साथ ही उन रिक्तताओं की भी चर्चा करता है जो उस समय रह गईं व आज भी जिनके सन्दर्भ में कुछ नहीं किया गया है। मसलन, भारत जैसे बहुभाषी समाज में भाषा के मानदण्डों से क्या तात्पर्य है, बहुभाषिता का क्या तात्पर्य है, शिक्षा के सन्दर्भ में बहुभाषिता के क्या मायने हैं, संस्कृति के सन्दर्भ में, विविधता के सन्दर्भ में बहुभाषिता के क्या मायने हैं। लेख गुज़ारिश करता है कि इस सन्दर्भ में आगे बढ़ने की ज़रूरत है।

## भाषा के मसले और संविधान सभा की बहसें

भाषा के मसले संविधान-सभा में बहुत संवेदनशील रहे: कई बार तो बाँटने वाले या विभाजनकारी भी रहें। शुरुआती दिनों में संविधान सभा को समूहों या दलों में नहीं बाँटा गया था। लेकिन भाषा के मसलों पर यह पूरी तरह बँटी हुई दिखी। मूल अधिकारों की ही तरह भाषा प्रत्येक के जीवन को प्रभावित करती है। आप संविधान-सभा की बहसों के पन्ने पलटते हैं तो पाते हैं कि भाषा की समस्या ने इस सभा को उस के तीन साल के पूरे कार्यकाल में उत्तेजित और परेशान किए रखा। सभा के बिलकुल शुरुआती दौर में तो कुछ सदस्यों ने सभापति को देशज भाषाओं में सम्बोधित किया जो उनके कुछ ही साथी सदस्य समझ पाते थे। अलग-अलग लोगों के लिए भाषा के कई अलग-अलग अर्थ थे। एक अर्थ में इसका सम्बन्ध प्राथमिक स्कूलों में मातृ-भाषा शिक्षण से था; कुछ लोगों के लिए भाषा सामाजिक रुतबे का स्रोत थी जिसके माध्यम से विशेष सुविधा-सम्पन्न वर्गों के बच्चे केन्द्रीय सेवा-परीक्षाओं के योग्य बन सकते थे; अन्य के लिए यह भाषाई एवं धार्मिक समुदायों के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक गर्व से जुड़ी बात थी। कुछ थे जो भाषा को ताकत के साथ जोड़ते हुए, विदेशियों और उपनिवेशकों द्वारा मूल निवासियों पर अधिकार और नियंत्रण के अर्थ में देखते थे, जिसके चलते भाषा का मसला राष्ट्रीय गौरव का भाव जगाता था - और इसलिए राष्ट्रीय भाषा के वास्ते तथा संविधान के हिन्दी रूपान्तर के हक में दलीलें दी गईं। भाषा के प्रति अलग-अलग दृष्टिकोणों ने अपनी ही तरह की तार्किक सोच को जन्म दिया। और ये अलग-अलग दृष्टिकोण व उनके तर्क संविधान-सभा की बहसों को निरन्तर घेरे रहे।

हालाँकि 19वीं सदी का रूमानी-कौमी राष्ट्रवाद, बँटवारे का सदमा और आज़ादी के संघर्ष के दौरान एक राष्ट्रीय भाषा के विचार को आगे लाने वाला धार्मिक-राष्ट्रवादी विमर्श स्पष्ट तौर पर सबके सामने थे, संविधान-सभा की बहसों ने अन्य के मुकाबले किसी एक भारतीय भाषा को तरजीह दिए बिना स्वयं को भाषा-सम्बन्धी किसी भी सम्भावित विवाद में पड़ने से बचाकर रखा। सभा के सदस्य इस बात से भली-भाँति परिचित थे कि भाषा का मामला एक निहायत मुश्किल और टेढ़ा मसला है, इसलिए उन्होंने असम्भव को सम्भव बनाने की कोशिश नहीं की। और उन्होंने एक कमाल का कदम उठाते हुए हिन्दी को संघ की राजभाषा (राष्ट्रीय भाषा नहीं) करार दिया, जिसे अन्तर्राज्यीय सम्प्रेषण के लिए प्रयोग किया जाएगा और शुरुआती 15 साल के लिए अँग्रेज़ी का दर्जा "सहयोगी राजभाषा" के तौर पर सुनिश्चित कर दिया।

## बहस में गाँधी

संविधान-सभा की बहसों में भाषा सम्बन्धी वाद-विवाद जब भी लोगों को बाँटने और साम्प्रदायिक रंग लेने के कगार पर पहुँचता महसूस होता तो गाँधी के अलौकिक हस्तक्षेप से चर्चा में एक सन्तुलन आ जाता। उदाहरण के लिए, अय्यंगर के संशोधन में 13 देशज भाषाओं की सूची से पहले आने वाले एक अनुच्छेद में 'मिली-जुली संस्कृति' तथा हिन्दुस्तानी में प्रयोग होने वाले रूपों, शैली और अभिव्यक्ति के ज़िक्र की प्रतिक्रिया में जब सेठ गोविन्द

दास ने कहा कि-

> ... उर्दू ने अधिकतर देश के बाहर से प्रेरणा ली है... यह सच है कि हम ने अपने देश को धर्म-निरपेक्ष देश के तौर पर स्वीकार किया है लेकिन हम ने यह कभी नहीं सोचा था कि इस स्वीकृति का अर्थ विविध संस्कृतियों के निरन्तर अस्तित्व की स्वीकृति होगा। भारत प्राचीन इतिहास वाला एक प्राचीन देश है। हज़ारों साल से यहाँ एक ही संस्कृति रही है। यह परम्परा अब भी अटूट है। इसी परम्परा को बनाए रखने के लिए हम सम्पूर्ण देश के लिए एक भाषा और एक लिपि चाहते हैं।
>
> (संविधान सभा बहस-मुबाहिसे, 1989, खण्ड-9, 1328)

तो नेहरू ने गाँधी की विरासत को आधार बनाते हुए अय्यंगर के संशोधन के बचाव में सेठ गोविन्द दास को (उनका नाम लिए बिना) उपयुक्त जवाब दिया। उन्होंने कहा कि राजभाषा के तौर पर ऐसे मुहावरे का इख्तियार न किया जाना, "जिसे उत्तरी भारत में पली-बढ़ी मिली-जुली संस्कृति का प्रतिनिधित्व करना चाहिए", 'राष्ट्रपिता' से विश्वासघात होगा (संविधान सभा बहस-मुबाहिसे, 1989, खण्ड-9, 1411)। "नकल और अनुकरण चाहे कितना ही किया जाए... वह आप को वास्तव में सुसंस्कृत नहीं बना सकता, क्योंकि आप हमेशा किसी और की ही नकल होंगे... जब आप एक नए युग की दहलीज़ पर हैं, तो हमेशा बीते हुए की और भूतकाल की ही बात करना उस मुख्यद्वार में प्रवेश के लिए अच्छी तैयारी नहीं है। भाषा भी इन्हीं में से एक मुद्दा है, कई अन्य भी हैं" (संविधान सभा बहस-मुबाहिसे, 1989, खण्ड-9, 1412)।

अय्यंगर के समझौता-फॉर्मूला ने कई संशोधनों के लिए निमंत्रण का काम किया। सभा में पेश हुए उनके मजमून में किए गए करीब 400 संशोधनों ने मूल तौर पर चार पहलुओं में फेरबदल ला दिए जो महत्वपूर्ण थे (जाफ्रेलो, 2004: 143)। ये थे: संविधान के जारी होने के 15 साल बाद राष्ट्रपति संस्कृत मूल के 'अंकों' को शासकीय तौर पर मान्यता देंगे; गणतंत्र के राष्ट्रपति की स्वीकृति से हिन्दी को राज्यों की अदालतों में प्रयोग किया जाएगा; कानूनी मजमूनों को क्षेत्रीय भाषाओं में जारी किया जा सकता है बशर्ते कि अँग्रेज़ी अनुवाद भी मुहैया करवाया गया हो; संस्कृत को प्रारम्भिक सूची में आधिकारिक तौर पर मान्यता दे कर 13 भाषाओं में जोड़ा जाएगा।

इस तरह अँग्रेज़ी सम्भ्रान्त वर्गों की और अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों की भाषा बनी रही। 1965 की समय-सीमा के समीप आते-आते 1963 में संसद ने इस मुद्दे पर पुनर्विचार किया तथा राजभाषा अधिनियम के तहत अँग्रेज़ी को सहायक राजभाषा बना दिया गया। अन्ततः 1967 के संशोधन ने गैर-हिन्दी भाषी राज्यों के भय को दूर करते हुए अँग्रेज़ी के प्रयोग की तब तक के लिए गारंटी दी जब तक कि गैर-हिन्दी भाषी राज्यों की ओर से इसे बदले जाने की माँग नहीं आती। इस तरह शिक्षा में लम्बे समय के लिए द्विभाषीयता की अनिश्चितकालीन नीति की शुरुआत हुई।

## भाषा के मसले और भारत का संविधान: भाषा-नीति पर एक आलोचनात्मक दृष्टि

भारत के संविधान ने राष्ट्र-भाषा को राजभाषा से अलग करके तथा हिन्दी को देश की राजभाषा के तौर पर चुन कर भाषा के विवाद को सुलझाया। पर इसके चलते बहुभाषिकता वस्तुत: देश में एक प्रतीक के रूप में रह गई। बहुभाषिकता को बढ़ावा देने की नीति भेदभावहीनता के सिद्धान्तों पर आधारित है और इसका प्रभाव किसी भाषा के बोलने वालों और स्वयं उस भाषा, दोनों पर पड़ सकता है। पहली सूरत व्यक्ति विशेष को भाषा-आधारित भेदभाव से रहित अपने सुख-कल्याण के लिए समान मौके मिलने से जुड़ी हुई है। भाषा की वजह से पैदा होने वाले टकराव को संविधान ने नागरिकों के मूल अधिकार बनाकर सुलझाया [अनुच्छेद 15(1) तथा 16(1) एवं (2)]। हालाँकि इन अनुच्छेदों में जिसे भेदभाव माना गया है, वे जन्म से ही साथ रहने वाले लक्षण हैं जैसे धर्म, जाति, लिंग, जन्म-स्थान या इनमें से कोई एक। ये एक तरह से आरोपित लक्षण हैं - जबकि भेदभाव की इस अवधारणा के तहत भाषा एक अर्जित किया गया लक्षण है (अन्नामलाई) जिससे पहचान मिलती तो है, मगर अर्थ-विस्तार से। मसलन, जिन नौकरियों में भाषा-सम्बन्धी दक्षताएँ आवश्यक होंगी, उनके लिए आवश्यक भाषा-विशेष का अच्छा ज्ञान रोज़गार के लिए समानता के सिद्धान्त को पूरा करेगा। जहाँ किसी तरह की भाषा-सम्बन्धी दक्षताएँ आवश्यक नहीं हैं, वहाँ कोई भेदभाव नहीं होगा।

अनुच्छेद 29 (2) सभी नागरिकों को यह विशेष अधिकार देता है कि वे राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता पाने वाली किसी भी शैक्षिक संस्था में प्रवेश ले सकते हैं। किसी भी भाषा बोलने वाले को इस आधार पर प्रवेश से वंचित नहीं रखा जा सकता कि उसके पास शैक्षिक पाठ्यचर्या के लिए आवश्यक भाषा में दक्षता नहीं है। वास्तव में भारत में शिक्षा की राष्ट्रीय नीति के मुताबिक एक विद्यार्थी के पास 10 साल की स्कूली शिक्षा में अलग-अलग दक्षता-स्तर की तीन भाषाएँ होनी चाहिए।

दूसरी ओर, भाषा से सम्बद्ध भेदभाव में, शिक्षण के माध्यम या सिखाई जाने वाली भाषा आदि के तौर पर भाषा के इस्तेमाल की बात शामिल होती है। अनुच्छेद 29 इस भेदभाव को कम करता है: यह भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति को बनाए रखने का बुनियादी अधिकार देता है [अनुच्छेद 29(1)]। अनुच्छेद 29(1) पर कोई तर्कसंगत अंकुश नहीं हैं। अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को बनाए रखने का यह अधिकार संविधान की ओर से नागरिकों को बिना शर्त, सम्पूर्णता में मिला है। लेकिन इस अधिकार को प्रभावी बना पाने के मददगार सन्दर्भ और बौद्धिक संसाधन शिक्षा से प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए, शिक्षा में भाषा के इस सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए गुरु नानक देव विश्वविद्यालय ने पंजाबी भाषा और साहित्य के अध्ययन और उसमें शोध को प्रोत्साहित करने के प्रावधान किए हैं। साथ ही पंजाबी भाषा, साहित्य और संस्कृति के विकास के लिए कदम उठाए जाने के प्रावधान भी किए हैं।

अनुच्छेद 30(1) के तहत धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों को अपने तरह की संस्थाएँ स्थापित करने और चलाने का अधिकार प्रदान किया गया है। संविधान में राज्य को आबद्ध किया गया है कि शैक्षिक संस्थाओं को सहायता देने में समानता का व्यवहार हो चाहे संस्थाएँ भाषा या धर्म के आधार पर अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित ही क्यों न हों [अनुच्छेद 30(2)]। इस प्रकार संविधान ने बड़ी दक्षता के साथ, विशेष तौर से अल्पसंख्यकों के सन्दर्भ में शिक्षा के लिए अवसरों में भेदभाव को कम किया।

जहाँ अनुच्छेद 29 अपने दायरे में भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को लाता है, अनुच्छेद 30 केवल धार्मिक एवं भाषाई अल्पसंख्यकों पर लागू होता है। अप्रैल 1947 में सभा ने जब कहा कि प्रत्येक इकाई में अल्पसंख्यकों को उनकी भाषा, लिपि और संस्कृति के सन्दर्भ में संरक्षण दिया जाएगा और कोई भी ऐसे कानून या नियम जारी न किए जा सकेंगे जो इस सन्दर्भ में उत्पीड़न या पक्षपातयुक्त ढंग से लागू हो सके (संविधान सभा बहस-मुबाहिसे, 1989, खण्ड 8: 893) तो संविधान सभा ने 'अल्पसंख्यकों' शब्द को बदल दिया और कॉन्स्टीट्युएंट ड्राफ्टिंग कमेटी ने इस महत्वपूर्ण अनुच्छेद को कुछ इस तरह लिखा: 'भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग में रहने वाले नागरिकों के किसी भी वर्ग को, जिसकी अलग से अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा' (संविधान सभा बहस-मुबाहिसे, 1989, खण्ड 8: 893)। संविधान-सभा के सदस्यों ने माना कि यह भाषा के अधिकार के लिए आह्वान है और इसलिए भारत के नागरिकों के हर वर्ग को अपनी भाषा के संरक्षण का अधिकार है। इसे किसी समूह के अधिकार के तौर पर नहीं देखा जाना चाहिए (संविधान सभा बहस-मुबाहिसे, 1989, खण्ड 9:1412)।

अनुच्छेद 30(1) के साथ मिलकर अनुच्छेद 29(1) अल्पसंख्यकों (या भारत के नागरिकों के किसी भी वर्ग) को शिक्षण के माध्यम के चुनाव का विकल्प देता है। राज्य को इस चुनाव की छूट भी देता है कि वह अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए इस प्रकार शिक्षण का माध्यम तय कर पाए कि अल्पसंख्यकों के अधिकार कार्यान्वित हो पाएँ। उदाहरण के लिए, पंजाब विश्वविद्यालय के मशहूर मुकदमे में पंजाब की सरकार ने एक अध्यादेश के ज़रिए बाध्य रूप से कुछ महाविद्यालयों को पंजाबी विश्वविद्यालय के साथ सम्बद्ध कर दिया, जिसने कुछ पाठ्यक्रमों के लिए गुरुमुखी लिपि में पंजाबी को शिक्षण एवं परीक्षा के लिए एकमात्र माध्यम के तौर पर नियत कर दिया। उच्चतम न्यायालय ने ऐलान किया कि इस प्रकार का अध्यादेश आर्य-समाजियों द्वारा संचालित महाविद्यालयों और बाध्य रूप से पंजाबी विश्वविद्यालय के साथ सम्बद्ध कर दिए गए महाविद्यालयों में उनकी अपनी लिपि के प्रयोग के अधिकार का हनन करता है। इसी प्रकार गुजरात विश्वविद्यालय ने जब गुजराती या हिन्दी को शिक्षण एवं परीक्षा के लिए एकमात्र माध्यम नियत कर दिया तो माना गया कि यह नियम अँग्रेज़ी को अपनी मातृभाषा मानने वाले एंग्लो-इंडियन नागरिकों के अधिकार का उल्लंघन है।

सभी अल्पसंख्यकों को अपने घेरे में लेने से अनुच्छेद 350 का संवैधानिक प्रावधान भारत

में भाषा-नीति की बुनियाद खड़ी करता है। यह प्रावधान इजाज़त देता है कि "प्रत्येक व्यक्ति किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी भी अधिकारी या प्राधिकारी को, यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार होगा।" अनुच्छेद 350क राज्य पर दायित्व डालता है कि प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बच्चों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं को उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी भी राज्य को ऐसे निर्देश दे सकेगा जो वह विवेकानुसार ऐसी सुविधाओं को उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है। अनुच्छेद 350ख(1) के मुताबिक भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए एक विशेष अधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा, अनुच्छेद ख (2) के मुताबिक इस विशेष अधिकारी का कर्तव्य होगा कि वह इस संविधान के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए उपबन्धित रक्षा उपायों से सम्बन्धित सभी विषयों का अन्वेषण करे और उन विषयों के सम्बन्ध में ऐसे अन्तरालों पर जो राष्ट्रपति निर्दिष्ट करे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे और राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा और सम्बन्धित राज्यों की सरकारों को भिजवाएगा। लेकिन 350क तथा 350ख के रूप में आए इन दो संशोधनों के चलते अनुच्छेद 350 इन अल्पसंख्यकों के लिए निष्फल हो गया। ये विशेष निर्देश के रूप में हैं न कि मौलिक अधिकार के रूप में और इसलिए न तो राज्य भाषाई अल्पसंख्यकों के प्रति दायित्व निभाने के लिए अतिरिक्त कोशिश करता है और न ही कमियों और चूकों को न्यायालय में सोच-विचार के लिए लाया जाता है। भारत सरकार द्वारा स्थापित भाषाई अल्पसंख्यक आयोग के विशेष अधिकारी के पास भी इस अनुच्छेद के उल्लंघन पर न्यायालयों से हस्तक्षेप करवाने की कानूनी शक्तियाँ नहीं हैं।

## भाषा का मुद्दा और घेरे में बँधी बहुभाषिता की नीति

'मिली-जुली संस्कृति' का विचार, जो संविधान-सभा बहसों के चरमपन्थियों और नरमपन्थियों के बीच स्वीकार्य समझौता था, बहुसंस्कृतिवाद समझा गया। लेकिन इसके तहत भी एक सारतात्विक (Essentialist) नज़रिया अपनाते हुए संस्कृति को लचकहीन और स्थाई मान लिया गया। भाषा-नीति ने भी इन विचारधारात्मक रुझानों को प्रतिबिम्बित किया और बहुसंस्कृतिवाद के असल महत्व को अनदेखा किया गया। भाषा-नीति भी 'अनेकता में एकता' के कोरस में इस बुनियादी मान्यता के साथ शामिल हो गई कि कोई 'एक भाषा' है जो लचकहीन और स्थाई है। 1956 में शिक्षा के केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड द्वारा अनुशंसित और 1961 में मुख्य-मंत्रियों के सम्मेलन में अनुमोदित 'त्रिभाषा फॉर्मूला' इस मान्यता के साथ एक समझौते की तरह उभर कर आया कि 'भाषा' है। यह फॉर्मूला मूलत: हिन्दी-भाषी तथा गैर हिन्दी-भाषी इलाकों में भाषा के अध्ययन को लेकर बराबरी स्थापित करने के साथ-साथ अँग्रेज़ी के माध्यम से एक आधुनिक नज़रिया बनाने का उद्देश्य लिए हुए था।

हमारी भाषा-नीति इस बात को स्वीकार करने में असमर्थ थी कि एक भाषा का दूसरी के साथ मेल-जोल बहुभाषिता नहीं है; भाषाई व्यवहार में अन्तर और भिन्नता सम्प्रेषण में

बाधक नहीं बल्कि सहायक है; हमारा शाब्दिक खज़ाना उस तरलता, धाराप्रवाहता से चित्रित होता है, न कि मानदण्डों व समरूपता से और अवधारणात्मक स्पष्टता, कार्यकुशलता का स्तर, विद्वता की उपलब्धि तथा बोधात्मक लचीलापन सबसे बेहतर हासिल हो पाते हैं जब शिक्षणशास्त्र की जड़ें बहुभाषिकता में होती है। कक्षा में उपलब्ध बहुभाषिता का उपयोग भाषा-शिक्षण के लिए संसाधन तथा लक्ष्य, दोनों तौर पर किया जा सकता है। लेकिन इसका असर सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में मातृभाषा के उपयोग पर भी पड़ता हैं। शिक्षार्थी को अपनी मातृभाषा प्रयोग करने की इजाज़त दी जाती है तो अन्य शिक्षार्थियों को भाषा की भिन्नताओं-विविधताओं के प्रति संवेदशील बनाने में मदद मिलेगी और इससे भाषा के रूपों के बारे में (या भाषा की प्रकृति पर विचार करने के बारे में) जागरूकता पैदा की जा सकती है जिससे आगे अधिक भाषा सीखने में मदद मिल सकती है। भाषा की प्रकृति पर विचार करने के प्रति जागरूकता का यह अतिरिक्त लाभ उच्च-स्तरीय सोच-विचार तथा पढ़े हुए को अच्छे से समझने को प्रोत्साहित करेगा।

बहुभाषिता और शिक्षा पर हुआ काम और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 तथा भारतीय भाषाओं के शिक्षण पर तैयार उसका आधार-पत्र इस बात का संकेत देते हैं कि भाषा-नीति के पारिभाषिक मानकों में परिवर्तन आया है, जो संविधान सभा के बहस-मुबाहिसों के सदस्यों की बुद्धिमता को तो स्वीकारता है लेकिन यह भी समझता है कि संविधान सभा की बहसों पर आधारित सिफारिशों और नीतियों से बाहर निकलकर आगे बढ़ने की ज़रूरत है (अग्निहोत्री, 2007:200)।

**स्रोत**

- एस इम्तियाज़ हसनैन, "बहुभाषिकता, भाषा नीति व संविधान सभा के बहस-मुबाहिसे", *लैंग्वेज एंड लैंग्वेज टीचिंग,* 1.2.4, 47-51, जुलाई 2013।

**सन्दर्भ**


- रमाकान्त अग्निहोत्री, 2007, "आइडेंटिटी एंड मल्टीलिंगुएलिटी: द केस ऑफ इंडिया", *लैंग्वेज पॉलिसी, कल्चर एंड आइडेन्टिटी इन एशियन कॉन्टेक्स्ट्स,* एमी बीएमत्सुई व जेम्स डब्ल्यू टॉल्फसन (सम्पादक), लंदन: लॉरेंस अर्लबौम एसोसिएट्स।
- ई अन्नामलाई, 2012, "लैंग्वेज इन पॉलिटिकल इकॉनमी एण्ड मार्केट इकॉनमी: ए केस स्टडी ऑफ इंडिया", *इंटरनेशनल जरनल ऑफ़ लैंग्वेज एंड लॉ।*
- ग्रैनविल ऑस्टिन, 1966, *द इंडियन कॉन्स्टीट्यूशन: कॉर्नरस्टोन ऑफ अ नेशन,* ऑक्सफोर्ड: क्लैरेण्डन प्रेस।
- कॉन्स्टीट्युएंट असेम्ब्ली डिबेट्स (1946-1950), नई दिल्ली: इंडियन नेशनल आर्काइव्स।
- सी जाफ्रेलो, 2004, "कम्पोज़िट कल्चर इज़ नॉट मल्टीकल्चरलिज़्म: अ स्टडी ऑफ द इंडियन कॉन्सटीट्युएंट असेम्ब्ली डिबेट्स", *इंडिया एंड द पॉलिटिक्स ऑफ डेवलपिंग कन्ट्रीज़: एसेज़ इन मेमरी ऑफ माइरन वायनर,* आशुतोष वार्श्नी (सम्पादक), नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशंस।
- एम पी जैन, 2008, *इण्डियन कॉन्स्टीट्यूशनल लॉ,* नई दिल्ली: वाधवा एण्ड कम्पनी लॉ पब्लिशर्स।